

एक विलक्षण जीवन-वृत्त [माँ दिव्य ज्योति (प्रो० देवकी जी)]

मानव सेवा संघ के दर्शन पर आधारित जीवनोपयोगी साधन-सूत्रों के संकलन रूपी पुस्तक "साधन-सूत्र" में ब्रह्मनिष्ठ, क्रांत-दर्शी, प्रज्ञा-चक्षु संत स्वामी शरणानन्द जी के वचनों के उद्धरण के साथ-साथ माँ दिव्य ज्योति (प्रो० देवकी जी) के प्रवचनों के काफ़ी अंश उद्धरित हैं।

जो लोग स्वामी शरणानन्द जी से पूर्व परिचित नहीं हैं, उन्हें प्रश्नगत साधन-सूत्रों से उनके जीवन वृत्त की काफ़ी जानकारी हो जाती है। मानव सेवा संघ वृन्दावन द्वारा प्रकाशित पुस्तिका "संत-जीवन-दर्पण" से उन महान संत का पर्याप्त परिचय मिल जाता है।

इस दर्शन के प्रेमी लोगों में जिज्ञासा हुई कि देवकी बहिन जी, जिनका नाम 'साधन-सूत्र' पुस्तक में बार-बार आया है, उनका परिचय क्या है। उनके जीवन वृत्त को जानने की उत्सुकता हुई।

मूल रूप से उस पुस्तक में उनका परिचय परमकोटि की साधिका के रूप में है जिन्होंने मानव सेवा संघ के दर्शन को पूर्ण रूपेण आत्मसात् किया था। उनके प्रवचन के उद्धरण से यह तो जानकारी हो ही जाती है कि मानव सेवा संघ के दर्शन को उन्होंने किस गहराई और स्पष्टता (clarity) के साथ आत्मसात् किया था। उनके जीवन वृत्त का कुछ अनुमान किन्हीं साधन-सूत्रों में वर्णित प्रसंग से हो जाता है।

स्वामी शरणानन्द जी की ही भाँति उन्होंने भी अपनी जीवनी न तो लिखी और न ही बताई। प्रसंगवश कुछ चर्चाओं और उन्हीं के लेखों में उपलब्ध तथ्यों को जोड़ कर एक प्रकार से उनका जीवन-वृत्त बनता है।

उनका जन्म बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में उत्तरी बिहार प्रान्त में हुआ था। बहुत छोटी अवस्था में वह विधवा हो गई। उनके लेखों से पता चलता है कि वह बहुत दृढ़ निश्चय वाली थीं और परिस्थितियों के कारण ईश्वर के प्रति तार्किक, विद्रोही दृष्टिकोण था। ईश्वर से सवाल करती थीं और जवाब मांगती थीं। उसका एक नमूना नीचे प्रस्तुत है—

“एक समय था जब सृष्टि का विधान मुझे अपनी जरूरत के सर्वथा विपरीत प्रतीत होता था। घटना-चक्र का आशातीत गति से घूमते रहना, अनुकूलता का प्रतिकूलता में बदल जाना, प्रिय संयोग के सुख का दुस्सह वियोग के दुःख में बदल जाना.... और अपना वह विवश-चित्र – ठगी ठगी सी हत्बुद्धि हो देखते का देखते रह जाना— बड़ा ही क्रूर प्रतीत होता था। कोमल हृदय की कोमल भावनायें नियति के कठोर थपेड़ों से चकनाचूर हो जातीं और घायल हृदय के विवश क्षोभ की आवाज़ सुनाई देती— कौन है सृष्टि का मालिक? कौन है मेरा निर्माता? क्या मज़ा आता है उसको सृष्टि बनाने में और व्यक्ति को इतना विवश और दुःखी करके रखने में कि वह जो चाहता है सो होता नहीं, जो होता है सो भाता नहीं और जो भाता है वह रहता नहीं? यह भी कोई लीला है जिसमें कोई तड़प-तड़प कर जीने के लिये बाध्य हो और किसी का खेल चले!”

इस प्रकार की मानसिक उद्विग्नता (agitated mind) के कारण उनमें जो भाव उठा वह उन्हीं के शब्दों में—

“अपने सब पुरुषार्थ कर चुकने के बाद भी जब जीवन का सूनापन नहीं मिटा, तब मुझे ऐसा सूझने लगा कि भगवान के घर का दरवाज़ा देखा हुआ संत मिल जाता तो मुझे भी राह दिखा देता। मैंने ऐसी आवश्यकता महसूस की और मुझे ऐसे सन्त मिल गये।” (‘पाथेय’ पुस्तक के ‘दो शब्द’ से)

कैसे? उनकी मानसिक दशा से उनके निकट के लोग परिचित थे। एक बार जब वह अपनी ममेरी बहिन से मिलीं तो उन्होंने उनसे कहा कि ऐसे ही एक संत आये हुए हैं, कहो तो मिलवाएँ। जब वह उन संत (स्वामी शरणानन्द जी) से मिलीं तो अपनी उसी स्टाइल में जैसा कि ऊपर पहले उद्धरण में है, संत से अपने अन्दर का गुबार उसी प्रकार निकालते हुए कहा कि जो चाहते हैं सो होता नहीं, जो होता है सो भाता नहीं और जो भाता है वह रहता नहीं।

सुनकर स्वामी जी ने सहज ढंग से कहा कि तुम्हारी बस इतनी ही तो समस्या है, तो तुम चाहना क्यों नहीं छोड़ देतीं? कुछ ऐसी ही और चर्चा हुई तब स्वामी जी ने कहा कि मेरा एक मित्र (कृष्ण भगवान) है, कहो तो उससे सगाई की बात करूँ। देवकी जी ने कहा कि मैं अभी पढ़ना चाहती हूँ। इस पर स्वामी जी ने सचेत किया कि अपना मूल्य मत घटाना।

नोट: तात्पर्य है कि तुम तो अविनाशी का अविनाशी अंश हो, मनुष्य होने का स्वयं में उसका गौरव है। यदि कोई अपनी पहचान इससे बनाने लगे कि मैं एम0ए0 हूँ, मैं अमुक पदाधिकारी हूँ आदि तो अपना मूल्य घटा ही तो लिया। भाव यह होना चाहिये कि मैं तो वही अविनाशी हूँ, ये सब तो मात्र योग्यताएँ और परिस्थितियाँ हैं जिनका सदुपयोग पर सेवा में होना है।

मनोविज्ञान विषय में एम0ए0 की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् जब वह स्वामी जी से मिलीं तो उन्हें सुनाया कि महाराज मैंने अपना मूल्य नहीं घटाया।

देवकी बहिन जी ने पढ़ाई के बाद विमेन्स डिग्री कॉलेज, राँची में अध्यापन की सेवा शुरू की। अवकाश के समय बीच बीच में स्वामी जी से मिलना होता था, परन्तु मुख्य रूप से उनकी साधना का निर्माण पत्रों के ही माध्यम से होता रहा। स्वामी जी के उन पत्रों को उन्होंने 'पाथेय' नामक पुस्तक का रूप दिया जो मानव सेवा संघ, वृन्दावन से प्रकाशित है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में प्रस्तावना के रूप में 'दो शब्द' उनके द्वारा लिखा गया है वह नीचे अक्षरशः प्रस्तुत है—

"अपने सब पुरुषार्थ कर चुकने के बाद भी जब जीवन का सूनापन नहीं मिटा तब मुझे ऐसा सूझने लगा कि भगवान के घर का दरवाजा देखा हुआ कोई सन्त मिल जाता तो मुझे भी राह दिखा देता। मैंने ऐसी आवश्यकता महसूस की और मुझे ऐसे सन्त मिल गये। उन्होंने एक कुशल अनुभवी चिकित्सक की भाँति भव-रोगों से ग्रसित मेरे व्यक्तित्व को अपनी निगरानी में ले लिया। भवरोग-नाशिनी दिव्य-दृष्टि से मेरे तन, मन और अहं का परीक्षण हुआ। दशा का निदान एवं निवारणार्थ साधना का चुनाव तत्क्षण हो गया। प्रथम साक्षात्कार (Interview) में ही बिना मेरे पूछे वह सब कह दिया गया, जिसकी मुझे ज़रूरत थी, अर्थात् मेरे लिए जीवन की राह थी। मुझे बहुत दिनों के बाद पता चला कि 1 जनवरी 1954 को प्रातःकाल जो कुछ श्रीमहाराजजी ने मुझे बताया वह मेरी दीक्षा थी।

सत्संग और साधना का क्रम आरम्भ हुआ। भव-रोगों से मुक्त कर साधक के शुद्ध अहं को कैसे-कैसे ज्ञान के प्रकाश-पुंज और प्रेम के अनन्त रस में परिवर्तित किया जाता है इस दिशा में सत्यनिष्ठ, अनुभवी, मार्गदर्शक सन्त ने मेरे अवस्थान्तरण (Transference of Stages) के क्रम में अपने अनूठे, अद्भुत प्रयोगों को आरम्भ किया। मेरा निवास श्रीमहाराजजी से दूर नगर में था। दशाओं का

नोट: 'दो शब्द', साधन-पथ पर उनकी प्रजाति का इतिहास है, इसलिये पूरा इन्द्रित है।

परिचय देना, साधन-पथ में उठने वाले प्रश्नों का प्रस्तुतीकरण एवं उनका समाधान पत्र-व्यवहार से ही होता था।

‘पाथेय’ में संकलित पत्र अहं के विकास की क्रमिक अवस्थाओं के द्योतक भी हैं और उनके निवारणार्थ अमोघ साधनों की श्रृंखला भी। मेरे लिए इन पत्रों में तुलसी-बिरवों सी पावनता है, जिनमें अहं की मलिनता का नाश करने की अमोघ शक्ति है।

इन पत्रों के लिखाने वाले संत को मैं क्या कहूँ ! अनेक बार ऐसा हुआ है कि साधन-काल में जिस क्षण व्याधियाँ प्रकट होती थीं मेरे मन में, उसी क्षण श्रीमहाराजजी जहाँ भी कहीं होते, मेरी दशा का पता चल जाता उनको और वे तत्काल ही उस व्याधि की निवृत्ति के उपाय लिखवा कर भेज देते। कभी-कभी ऐसा होता था कि इधर मैंने प्रश्न लिखकर भेजने के लिए तैयार किया तब तक उधर से उत्तर लिखकर आ गया। कभी इससे भी बढ़कर आश्चर्यजनक बात यह हो जाती थी कि मुझे अपनी व्याधि का पता तब चलता जब पत्र में उसका निराकरण लिखकर आता था। मैं आश्चर्यचकित होकर रह जाती थी कि श्रीमहाराजजी ने मेरी उन गुत्थियों को जाना कैसे, जिनका मुझे भी पता नहीं था !

श्री महाराजजी की अहं-शून्य अर्न्तदृष्टि इतनी पैनी थी कि साधक के पथ में उभड़ते हुए गहन से गहन मनोवैज्ञानिक एवं गूढ़ से गूढ़ दार्शनिक तथ्य उनको स्पष्ट दिख जाते थे। सर्वात्म-भाव से भावित संत-हृदय, भव-रोगों के दलदल में फँसे हुए साधक को उबारने के लिए अति व्यग्र हो उठता था। आत्मीयता-जनित अभिन्नता में वह संजीवनी-मूरि प्रकट होती थी जो साधक में नवजीवन का संचार कर सकती है।

उनके लिखाये हुए पत्रों ने मुझे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने में ‘पथ’ और ‘पाथेय’, सब कुछ दिया है। साधन-काल की समस्याओं को सुलझाने के साथ-साथ भावी उद्भव का भी अथक अचूक प्रयास है इन पत्रों में— मेरे अवस्थान्तरण के साथ सम्बोधन के शब्द भी क्रमिक ढंग से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते हुए जीवन की अन्तिम परिणति को इंगित करने वाले हो गये हैं। कितनी लगन, कितनी तत्परता थी उस परम कारुणिक संत के हृदय में एक आतुर साधक के जीवन को पूर्ण बनाने की ! कितनी कलायें वे जानते थे भव-रोगों से दबे हुए अहं को ऊपर उठाकर उद्गम की

ओर उन्मुख करने की ! कभी-कभी पत्र पढ़ते-पढ़ते मैं पत्र-लेखक की महिमा में स्वयं ही खो जाती थी- पत्र पढ़ना भूल जाती थी।

मेरे लिए ये पत्र अमृत-कण हैं; जीवन-दर्पण हैं। प्रगति के पथ पर आगे-आगे बढ़ते जाने में इनके अर्थों की गहनता भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इनके संग्रह में प्रकाशन का ख्याल नहीं था। साधन-पथ के सम्बल के रूप में इनको संजोया मैंने-मेरा काम हो गया। अब इस 'पाथेय' से जीवन-पथ के अन्य पथिकों को पुष्टि मिले-इसी सद्भावना के साथ,

देवकी''

इस प्रकार एक तरफ साधन-निर्माण होता रहा दूसरी तरफ अपने सद्गुरु उन्ही स्वामी शरणानन्द जी के निर्देशन में उनके द्वारा प्रणीत मानव सेवा संघ का कार्य करती रहीं। स्वामी जी का साहित्य जिसे स्वामी जी ने संघ का ही दर्शन कहा, देवकी बहिन ने लिपिबद्ध किया। स्वामी जी बोलते जाते थे और वह फाउन्टेन-पेन से लिखती जाती थीं। एक व्यक्ति दूसरे पेन में रोशनाई भर कर तैयार रखता था, ताकि पेन की रोशनाई खत्म होने से स्वामी जी के बोलने का प्रवाह प्रभावित न हो।

प्रारम्भ से ही स्वामी जी ने उनका नया नामकरण किया 'दिव्यज्योति'। कालान्तर में उन्हें मंच पर अपने साथ बैठाकर इस दर्शन की व्याख्या और साधकों के जीवन सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर दिलवाना शुरू किया।

विमेन्स डिग्री कॉलेज, राँची से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव सेवा संघ की सेवा में समर्पित कर दिया। परन्तु आगे बढ़ने के पूर्व एक घटना का उल्लेख उचित होगा जिससे यह मालूम होगा कि साधन-पथ पर उनकी प्रगति किस तेजी से हुई। कॉलेज में लड़कियों के होस्टल की वार्डन थीं। एक रात बहुत जोरों का आँधी तूफान आया और बिजली भी चली गई। होस्टल की चहारदिवारी कुछ जगह टूटी हुई थी। देवकी जी और लड़कियाँ सशंकित एवं भयभीत हो रही थीं कि कहीं गुण्डे बदमाश होस्टल में न घुस आयें। तब प्रभु ने बलदाऊ जी के रूप में दर्शन देकर कहा कि तुम लोग घबराओ नहीं, मैं हूँ न।

नोट: कोई कह सकता है कि इसमें देवकी जी की क्या विशेषता हुई। यह तो प्रभु की करुणा और कृपालुता थी कि उन्होंने उस रूप में दर्शन देकर आश्वस्त किया। सोचने की बात है कि नृसिंह भगवान प्रहलाद की ही रक्षा के लिये क्यों प्रकट हुए। सहज उत्तर है कि प्रहलाद के जीवन में प्रभु का और केवल प्रभु का ही विश्वास था, अन्य कोई विश्वास था ही नहीं। इसी प्रकार देवकी जी के जीवन में अन्य कोई विश्वास था ही नहीं। अनेक प्रभु विश्वासियों को इसका अनुभव हुआ होगा कि जिसे मात्र प्रभु का विश्वास है उन्हीं के समर्पित हैं, उनका हित-साधन प्रभु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से करते रहते हैं।

दिसम्बर 25, 1974 को स्वामी जी के शरीर त्याग के पश्चात् वह उनके स्थान पर प्रवचन के माध्यम से मानव जाति को उसके वास्तविक स्वरूप से परिचित कराने और उसकी प्राप्ति के सहज उपाय से अवगत कराने हेतु विभिन्न प्राँतों का भ्रमण करती रहीं। उनका स्वास्थ्य सामान्यतः भी अच्छा नहीं रहता था। परन्तु जब कैंसर रोग का पता चला, ऑपरेशन भी हुआ तब से स्वास्थ्य और बिगड़ता गया। बाद के दिनों में मानव सेवा संघ के जयपुर आश्रम 'प्रेम निकेतन' में रहने लगीं। उनसे वहाँ मिलने का तीन बार अवसर बना। कैंसर के कारण पीड़ा तो थी ही परन्तु वह शान्त पड़ी रहती थीं। पीड़ा की तीव्रता की चर्चा होती तो कहती थीं कि यदि मैं कराहूँ तो गेट तक (जो कम से कम सौ गज दूर था) सुनाई पड़ेगा। परन्तु वह शरीर से सर्वथा असंग होकर अपने निज आनन्दस्वरूप में स्थित रहती थीं।

उनका शरीर त्याग भी एक विलक्षण घटना है। स्वामी शरणानन्द जी ने ईच्छा-मृत्यु की अपनी शक्ति से महीना भर हार्ट अटैक के बार बार होने पर भी (जिससे डाक्टर भी अचम्भित थे) शरीर त्याग के लिये 25 दिसम्बर चुना जिस दिन क्रिसमस और बकरीद त्योहारों के अतिरिक्त गीता-जयन्ती (मोक्षदा एकादशी) और मानव सेवा संघ के प्राकट्य दिवस का इकट्ठे संयोग था।

परमपूज्या माँ किशोरी माता जी एक महान महिला संत हुई। उनका स्थान कार्तिकेय सेवा आश्रम, गुप्तार घाट, फैजाबाद था। उनको दीक्षा देने वाले गुरु परम पूज्य स्वामी कार्तिकेय जी महाराज थे, पर स्वामी शरणानन्द जी की भी भक्त थीं। देवकी बहिन से उनकी प्रगाढ़ आत्मीयता थी। किशोरी माता जी जाड़ों में उज्जैन में रहती थीं। उस बार वहाँ से फैजाबाद लौटने के लिये जयपुर होती हुई आई।

जयपुर आश्रम में उनका और देवकी बहिन का वार्तालाप हुआ। जो संतप्रेमी साधक वहाँ मौजूद थे, उन्होंने बताया कि वह अस्वस्थता और बेहद कमजोरी के कारण बिस्तर में लेटी रहती थीं, पर किशोरी माता जी की बात सुनकर एकदम चेतन होकर उठ बैठीं। किशोरी माता जी ने कहा कि शरीर तो बहुत जर्जर हो चुका है, इसको बनाये रखने का क्या अर्थ। फिर उन दोनों ने एकान्त में वार्तालाप किया। तत्पश्चात् किशोरी माता जी ने उज्जैन सूचना भिजवाया कि महामृत्युन्जय का जाप बन्द कर दिया जाय। झालामण्ड के ठाकुर जगत सिंह जी भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने साथ के लोगों से कहा कि अब अगला जो भी पर्व आयेगा, उस दिन देवकी बहिन शरीर त्याग देंगी। और हुआ यही, एकादशी का पर्व आया और वह शरीर त्याग कर अपने परमधाम चली गई।

स्वामी शरणानन्द जी द्वारा प्रदत्त मानव जीवन के दर्शन को देवकी जी ने लिपिबद्ध तो किया ही, उन पुस्तकों में प्रस्तावना के रूप में पुस्तक के विषय-वस्तु का बहुत ही उपयोगी सार प्रस्तुत किया। उन्होंने जिस प्रकार अपने साधक जीवन को सामने रख कर उसमें उठने वाले प्रश्नों और उनका स्वामी जी ने किस प्रकार समाधान किया, को प्रस्तुत करते हुये मानव सेवा संघ के दर्शन की अपने प्रवचनों में व्याख्या किया उससे मानव जाति का बहुत बड़ा उपकार किया। साधक-समाज उनका हमेशा ऋणी रहेगा। इन प्रवचनों का संकलन 'जीवन-विवेचन' नाम से कैसेट और पुस्तक के रूप में मानव सेवा संघ, वृन्दावन में उपलब्ध है।